श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

देवकी-स्तुति (10.3)

देवकी के गर्भ में आकर, बन यदुवंशी विष्णु विराजे।
शंकर ब्रह्मा करते वंदन, बंदीगृह में हरि हैं साजे।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अथ सर्वगुणोपेतः(ख्), कालः(फ्) परमशोभनः ।
यर्ह्योवाजनजन्मर्क्षं(म्), शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ 1॥

यर्ह्यो+वाजन+जन्मर्क्षं(म्), शान्तर्क्ष+ग्रहता+रकम्

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब समस्त शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया रोहिणी नक्षत्र था आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त– सौम्य हो रहे थे ।

दिशः(फ्) प्रसेदुर्गगनं(न्), निर्मलोडुगणोदयम् ।
मही मङ्गलभूयिष्ठ- पुरग्रामव्रजाकरा ॥ 2॥

प्रसेदुर्+गगनं(न्), निर्मलो+डुगणो+दयम्, पुरग्राम+व्रजाकरा

दिशाएँ स्वच्छ प्रसन्न थीं। निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गलमय हो रही थीं ।

नद्यः(फ्) प्रसन्नसलिला, ह्रदा जलरुहश्रियः ।

द्विजालिकुलसन्नादस्-तबका वनराजयः ॥ 3॥

द्विजा+लिकुल+सन्नादस्

नदियोंका जल निर्मल हो गया था। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे।वनमें वृक्षों की पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयी थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे,तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे।

ववौ वायुः(स्) सुखस्पर्शः(फ्), पुण्यगन्धवहः(श्) शुचिः ।

अग्नयश्च द्विजातीनां(म्), शान्तास्तत्र समिन्धत ॥ 4॥

द्विजा+तीनां(म्), शान्तास्+तत्र

उस समय परम पवित्र और शीतल- मन्द-सुगन्ध वायु अपने स्पर्शसे लोगोंको सुखदान करती हुई बह रही थी। ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ जो कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं, वे इस समय अपने आप जल उठीं ।

मनां(म्)स्यासन् प्रसन्नानि, साधूनामसुरद्रुहाम् ।

जायमानेऽजने तस्मिन्, नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ 5॥

साधूना+मसुर+द्रुहाम्, नेदुर्+दुन्दुभयो

संत पुरुष पहलेसे ही चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया। जिस समय भगवान् के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं ।

जगुः(ख्) किन्नरगन्धर्वास्-तुष्टुवुः(स्) सिद्धचारणाः ।

विद्याधर्यश्च ननृतु- रप्सरोभिः(स्) समं(न्) तदा ॥ 6॥

किन्नर+गन्धर्+वास्, विद्या+धर्+यश्च

किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरमें गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान्के मङ्गलमय गुणोंकी स्तुति करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ नाचने लगीं ।

मुमुचुर्मुनयो देवाः(स्), सुमनां(म्)सि मुदान्विताः ।

मन्दं(म्) मन्दं(ञ्) जलधरा, जगर्जुरनुसागरम् ॥ 7॥

मुमुचुर्+मुनयो, जगर्+जुरनु+सागरम्

बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्दसे भरकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे ।

निशीथे तम उद्भूते, जायमाने जनार्दने ।

देवक्यां(न्) देवरूपिण्यां(वँ), विष्णुः(स्) सर्वगुहाशयः ।

आविरासीद्यथा प्राच्यां(न्), दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ 8॥

आविरा+सीद्यथा, दिशीन्+दुरिव

जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले जनार्दनके अवतारका समय था निशीथ। चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था। उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ।

तमद्भुतं(म्) बालकमम्बुजेक्षणं(ञ्),

चतुर्भुजं(म्) शङ्खगदाद्युदायुधम् ।

श्रीवत्सलक्ष्मं(ङ्)गलशोभिकौस्तुभं(म्),

पीताम्बरं(म्) सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ 9॥

तमद्+भुतं(म्), बालक+मम्बु+जेक्षणं(ञ्), शङ्खगदा+द्युदा+युधम्,

श्रीवत्स+लक्ष्मं(ङ्)गल+शोभिकौस्तुभं(म्), सान्+द्रपयो+दसौ+भगम्

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्-

विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ।

उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्-

विरोचमानं(वँ) वसुदेव ऐक्षत ॥ 10॥

महार्+हवैदूर्य+किरीट+ कुण्डलत्, परिष्वक्त+सहस्र+कुन्तलम्,
उद्दाम+काञ्चयङ्गद+कङ्कणा+दिभिर्

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए हैं। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न -अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणों के समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। इन सब आभूषणोंसे सुशोभित बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है ।

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं(म्),

सुतं(वँ) विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ।

कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्-

मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ 11॥

विस्मयोत्+फुल्ल+विलोचनो, विलोक्या+नकदुन्दुभिस्+तदा,

कृष्णा+वतारोत्+सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्,द्विजेभ्योऽ+युतमाप्लुतो

जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्र के रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये है, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्द से उनकी आँखे खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका संकल्प कर दिया ।

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं(म्),

परं(न्) नताङ्गः(ख्) कृतधीः(ख्) कृताञ्जलिः ।

स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं(वँ),

विरोचयन्तं(ङ्) गतभीः(फ्) प्रभाववित् ॥ 12॥

अथै+नमस्तौ+दवधार्य, सूतिका+गृहं(वँ),

परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृहको जगमग कर रहे थे। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परम पुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान् के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर फिर हाथ उनकी स्तुति करने लगे ।

वसुदेव उवाच

विदितोऽसि भवान् साक्षात्- पुरुषः(फ्) प्रकृतेः(फ्) परः ।

केवलानुभवानन्दं- स्वरूपः(स्) सर्वबुद्धिदृक् ॥ 13॥

केवला+नुभवानन्द

वसुदेवजीने कहा- मैं समझ गया कि आप प्रकृति से अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम है। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी है ।

स एवं स्वप्रकृत्येदं(म्), सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ।

तदनु त्वं(म्) ह्यप्रविष्टः(फ्), प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ 14॥

स्वप्रकृत्+येदं(म्),

आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृति से इस त्रिगुणमय जगत्की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते है ।

यथेमेऽविकृता भावास्- तथा ते विकृतैः(स्) सह ।

नानावीर्याः(फ्) पृथग्भूता, विराजं(ञ्) जनयन्ति हि ॥ 15॥

सन्निपत्य समुत्पाद्य, दृश्यन्तेऽनुगता इव ।

प्रागेव विद्यमानत्वान्-न तेषामिह सम्भवः ॥ 16॥

जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट- से जान पड़ते हैं; परंतु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहले से ही विद्यमान रहते हैं ।

एवं(म्) भवान् बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्-

ग्राह्यैर्गुणैः(स्) सन्नपि तद्गुणाग्रहः ।

अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं(न्) न ते,

सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ 17॥

बुद्ध्यनु+मेय+लक्षणैर्, ग्राह्यैर्+गुणैः(स्), अना+वृतत्वाद्

ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते है, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे ? (इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं) ।

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति,

व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।

विनानुवादं(न्) न च तन्मनीषितं(म्),

सम्यग् यतस्त्यक्तमुपाददत् पुमान् ॥ 18॥

स्वव्+यतिरे+कतोऽबुधः, तन्मनी+षितं(म्), यतस्+त्यक्त+मुपा+ददत्

जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वह अज्ञानी है। क्योंकि विचार करनेपर ये देह-गेह आदि पदार्थ वाग्विलासके सिवा और कुछ नहीं सिद्ध होते। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है ?

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसं(यँ)यमान् विभो,

वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ।

त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते,

त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ 19॥

त्वत्+तोऽस्य ,जन्मस्थितिसं(यँ)यमान् , वदन्त्य+नीहा+दगुणा+दविक्रियात्, त्वदा+श्रयत्वा+दुपचर्यते

प्रभो ! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं । फिर भी इस जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असंगत नहीं है। क्योंकि तीनों गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपमें ही आरोप किया जाता है ।

सँ त्वं(न्) त्रिलोकँस्थितये स्वमायया,

बिभर्षि शुँक्लं(ङ्) खलु वर्णमात्मनः ।

सर्गाय रँक्तं(म्) रजसोपबृं(म्)हितं(ङ्),

कृँष्णं(ञ्) च वर्णं(न्) तमसा जनात्यये ॥ 20॥

त्रिलोकस्+थितये

आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शु ल्कवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते है, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं ।

त्वमँस्य लोकँस्य विभो रिरँक्षिषुर्-

गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ।

राजँन्यसं(ञ्)ज्ञासुरकोटियूथपैर्-

निर्व्यूह्यमाना निहनिँष्यसे चमूः ॥ 21॥

गृहेऽ+वतीर्+णोऽसि, मम+खिलेश्वर राजन्+यसं(ञ्)ज्ञा+सुरको+टियूथपैर्, निर्व्यूह्य+माना

प्रभो! आप सर्वशक्तिमान और सबके स्वामी हैं। इस संसारको रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है। आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रखा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रखी हैं। आप उन सबका संहार करेंगे ।

अयं(न्) त्वसँभ्यँस्तव जँन्म नौ गृहे,

श्रुँत्वाग्रजां(म्)स्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ।

स तेऽवतारं(म्) पुरुषैः(स्) समर्पितं(म्),

श्रुँत्वाधुनैवाभिसरँत्युदायुधः ॥ 22॥

त्वसभ्यस्+तव, श्रुत्वा+ग्रजां(म्)स्ते, न्यवधीत्+सुरेश्वर , श्रुत्वा+धुनै+वाभिसरत्+युदायुधः

देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! यह कंस बड़ा दुष्ट है। इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयोंको मार डाला। अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा ।

श्रीशुक उवाच

अथैनमात्मजं(वँ) वीक्ष्य, महापुरुषलक्षणम् ।

देवकी तमुपाधावत्-कं(म्)साद् भीता शुचिस्मिता ॥ 23॥

अथै+नमात्+मजं(वँ)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-परीक्षित्! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवानके सभी लक्षण मौजूद हैं। पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं ।

देवक्युवाच

रूपं(यँ) यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं(म्),

ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं(न्) निर्विकारम् ।

सत्तामात्रं(न्) निर्विशेषं(न्) निरीहं(म्),

सं त्वं(म्) साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ 24॥

प्राहुरव्यक्त+माद्यं(म्), ज्योतिर्+निर्गुणं(न्), विष्णुरध्यात्म+दीपः

माता देवकीने कहा-प्रभो! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो ब्रह्म, ज्योतिः स्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन है, जिसे विशेषणरहित-अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है-वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं ।

नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने,

महाभूतेष्वादिभूतं(ङ्) गतेषु ।

व्यक्तेऽव्यक्तं(ङ्) कालवेगेन याते,

भवानेकः(श्) शिष्यते शेषसं(ञ्)ज्ञः ॥ 25॥

द्विपरार्+धा+वसाने , महाभूतेष्+वादिभूतं(ङ्), व्यक्तेऽ+व्यक्तं(ङ्)

जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु-दो परार्ध समाप्त हो जाते है, काल शक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, पञ्च महाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है-उस समय एकमात्र आप ही शेष रह जाते हैं। इसीसे आपका एक नाम 'शेष' भी है ।

योऽयं(ङ्)कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो,

चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ।

निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयां(म्)-

स्तं(न्) त्वेशानं(ङ्)क्षेमधाम प्रपद्ये ॥ 26॥

योऽयं(ङ्)+कालस्+तस्य तेऽव्यक्त+बन्धो, चेष्टा+माहुश्चेष्टते, निमे+षादिर्+वत्सरान्तो

प्रकृतिके एकमात्र सहायक प्रभो ! निमेषसे लेकर वर्षपर्यन्त अनेक विभागों में विभक्त जो काल है, जिसकी चेष्टासे यह सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट हो रहा है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीलामात्र है। आप सर्वशक्तिमान् और परम कल्याणके आश्रय हैं। मैं आपकी शरण लेती हूँ ।

मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः(फ्) पलायन्,

लोकान् सर्वान्निर्भयं(न्) नाध्यगच्छत् ।

त्वत्पादाब्जं(म्) प्राप्य यदृच्छयाद्य,

स्वस्थः(श्) शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ 27॥

मृत्युव्या+लभीतः(फ्), सर्वान्+निर्भयं(न्), नाध्य+गच्छत्

त्वत्पा+दाब्जं(म्), यदृच्छ+याद्य, मृत्युरस्मा+दपैति

प्रभो ! यह जीव मृत्युगस्त हो रहा है। यह मृत्युरूप कराल व्यालसे भयभीत होकर सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें भटकता रहा है; परन्तु इसे कभी कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका, जहाँ यह निर्भय होकर रहे। आज बड़े भाग्यसे इसे आपके चरणारविन्दोंकी शरण मिल गयी। अतः अब यह स्वस्थ होकर सुखकी नींद सो रहा है औरोकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग गयी है ।

सं त्वं(ङ्) घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्-

त्राहि त्रस्तान् भृत्यविद्रासहासि ।

रूपं(ञ्) चेदं(म्) पौरुषं(न्) ध्यानधिष्ण्यं(म्),

मा प्रत्यक्षं(म्) मां(म्)सदृशां(ङ्) कृषीष्ठाः ॥ 28॥

घोरा+दुग्रसेनात्+मजान्नस् , भृत्यविद्रा+सहासि

प्रभो ! आप हैं भक्तभयहारी। और हमलोग इस दुष्ट कंससे बहुत ही भयभीत हैं। अतः आप हमारी रक्षा कीजिये। आपका यह चतुर्भुज दिव्यरूप ध्यानकी वस्तु है। इसे केवल मांस-मज्जामय शरीरपर ही दृष्टि रखनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंके सामने प्रकट मत कीजिये ।

जन्म ते मय्यसौ पापो, मा विद्यान्मधुसूदन ।

समुद्विजे भवद्धेतोः(ख्), कं(ङ्)सादहमधीरधीः ॥ 29॥

विद्यान्+मधुसूदन, समुद्+विजे, भवद्+धेतोः(ख्),कं(ङ्)सा+दहमधी+रधीः

मधुसूदन ! इस पापी कंसको यह बात मालूम न हो कि आपका जन्म मेरे गर्भसे हुआ है। मेरा धैर्य टूट रहा है। आपके लिये मैं कंससे बहुत डर रही हूँ ।

उपसं(म्)हर विश्वात्मन्-नदो रूपमलौकिकम् ।

शङ्खचक्रगदापद्म- श्रिया जुष्टं(ञ्) चतुर्भुजम् ॥ 30॥

विश्वात्मन् ! आपका यह रूप अलौकिक है। आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये ।

विश्वं(यँ) यदेतत्स्वतनौ निशान्ते,

यथावकाशं(म्) पुरुषः(फ्) परो भवान् ।

बिभर्ति सोऽयं(म्) मम गर्भगोऽभू-

दहो नृलोकस्य विडम्बनं(म्) हि तत् ॥ 31॥

यदेतत्+स्वतनौ

प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमे वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको। वही परम पुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या है ?

श्रीभगवानुवाच

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः(फ्), पृश्निः(स्) स्वायम्भुवे सति ।

तदायं(म्) सुतपा नाम, प्रजापतिरकल्मषः ॥ 32॥

प्रजा+पतिर+कल्मषः

श्रीभगवान् ने कहा-देवि! स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था,उस समय तुम्हारा नाम था पृश्नि और ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे। तुम दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे ।

युवां(वँ) वै ब्रह्मणाऽऽदिष्टौ, प्रजासर्गे यदा ततः ।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं(न्), तेपाथे परमं(न्) तपः ॥ 33॥

सन्नियम्+येन्द्रियग्रामं(न्)

जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुमलोगोने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की ।

वर्षवातातपहिम-घर्मकालगुणाननु ।

सहमानौ श्वासरोध-विनिर्धूतमनोमलौ ॥ 34॥

वर्षवा+तातपहिम, विनिर्+धूत+मनो+मलौ

तुम दोनोंने वर्षा, वायु, घाम, शीत, उष्ण आदि कालके विभिन्न गुणोंका सहन किया और प्राणायामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले ।

शीर्णपर्णानिलाहारा-वुपशान्तेन चेतसा ।

मत्तः(ख्) कामानभीप्सन्तौ, मदाराधनमीहतुः ॥ 35॥

शीर्णपर्णा+निलाहारा, कामा+नभीप्+सन्तौ, मदारा+धनमी+हतुः

तुम दोनों कभी सूखे पत्ते खा लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था। इस प्रकार तुमलोगोंने मुझसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरी आराधना की ।

एवं(वँ) वां(न्) तप्यतोस्तीव्रं(न्), तपः(फ्) परमदुष्करम् ।

दिव्यवर्षसहस्राणि, द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ 36॥

तप्यतोस्+तीव्रं(न्), दिव्य+वर्ष+सहस्राणि, द्वादशे+युर्+मदात्मनोः

मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओंके बारह हजार वर्ष बीत गये।

तदा वां(म्) परितुष्टोऽह-ममुना वपुषानघे ।

तपसा श्रद्धया नित्यं(म्), भक्त्या च हृदि भावितः ॥ 37॥

प्रादुरासं(वँ) वरदराड्, युवयोः(ख्) कामदित्सया ।

व्रियतां(वँ) वर इत्युक्ते, मादृशो वां(वँ) वृतः(स्) सुतः ॥ 38॥

पुण्यमयी देवि! उस समय मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हुआ। क्योंकि तुम दोनोंने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे अपने हृदयमें नित्य निरन्तर मेरी भावना की थी। उस समय तुम दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये वर देनेवालोंका राजा मैं इसी रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ। जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो', तब तुम दोनोंने मेरे-जैसा पुत्र माँगा ।

अजुष्टग्राम्यविषया-वनपत्यौ च दम्पती ।

न वव्राथेऽपवर्गं(म्) मे, मोहितौ मम मायया ॥ 39॥

अजुष्ट+ग्राम्य+विषया , वव्राथेऽ+पवर्गं(म्)

उस समयतक विषय-भोगोंसे तुम लोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। तुम्हारे कोई सन्तान भी न थी। इसलिये मेरी मायासे मोहित होकर तुम दोनोंने मुझसे मोक्ष नहीं माँगा ।

गते मयि युवां(लँ) लब्ध्वा, वरं(म्) मत्सदृशं(म्) सुतम् ।

ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां(यँ), युवां(म्) प्राप्तमनोरथौ ॥ 40॥

भोगान+भुञ्+जाथां(यँ)

तुम्हें मेरे जैसा पुत्र होनेका वर प्राप्त हो गया और मैं वहाँसे चला गया। अब सफलमनोरथ होकर तुमलोग विषयोंका भोग करने लगे ।

अदृष्ट्वान्यतमं(लँ) लोके, शीलौदार्यगुणैः(स्) समम् ।

अहं(म्) सुतो वामभवं(म्), पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ 41॥

अदृष्ट्वान्+यतमं(लँ), शीलौ+दार्यगुणैः(स्)

मैंने देखा कि संसारमें शील-स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है; इसलिये मैं ही तुम दोनोंका पुत्र हुआ और उस समय मैं 'पृश्निगर्भ' के नामसे विख्यात हुआ ।

तयोर्वां(म्) पुनरेवाह-मदित्यामास कश्यपात् ।

उपेन्द्र इति विख्यातो, वामनत्वाच्च वामनः ॥ 42॥

मदित्+यामास, वामनत्+वाच्च

फिर दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। मेरा नाम था 'उपेन्द्र' । शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे ।

तृतीयेऽस्मिन् भवेऽहं(वँ) वै, तेनैव वपुषाथ वाम् ।

जातो भूयस्तयोरेव, सत्यं(म्) मे व्याहृतं(म्) सति ॥ 43॥

भूयस्+तयोरेव

सती देवकी! तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। मेरी वाणी सर्वदा सत्य होती है ।

एतद् वां(न्) दर्शितं(म्) रूपं(म्), प्राग्जन्मस्मरणाय मे ।

नान्यथा मद्भवं(ञ्) ज्ञानं(म्), मर्त्यलिं(ङ्)गेन जायते ॥ 44॥

प्राग्+जन्मस्+मरणाय, मर्त्य+ लिं(ङ्)गेन

मैंने तुम्हें अपना यह रूप इसलिये दिखला दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारोंका स्मरण हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो केवल मनुष्य-शरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती ।

युवां(म्) मां(म्) पुत्रभावेन, ब्रह्मभावेन चासकृत् ।

चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ, यास्येथे मद्गतिं(म्) पराम् ॥ 45॥

कृतस्+नेहौ

तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और चिन्तनके द्वारा तुम्हें मेरे परम पदकी प्राप्ति होगी ।

श्रीशुक उवाच

इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं(म्), भगवानात्ममायया ।

पित्रोः(स्) सम्पश्यतोः(स्) सद्यो, बभूव प्राकृतः(श्) शिशुः ॥ 46॥

इत्युक्त्वाऽऽ+सीद्धरिस्+तूष्णीं(म्), भगवा+नात्म+मायया

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् इतना कहकर चुप हो गये। अब उन्होंने अपनी योगमायासे पिता-माता के देखते-देखते तुरंत एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिया ।

ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः(स्),

सुतं(म्) समादाय स सूतिका गृहात् ।

यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा,

या योगमायाजनि नन्दजायया ॥ 47॥

शौरिर्+भगवत्+प्रचोदितः(स्), बहिर्+गन्तुमियेष, तर्+ह्यजा,

तब वसुदेवजीने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे उस योगमायाका जन्म हुआ, जो भगवान्‌की शक्ति होनेके कारण उनके समान ही जन्म-रहित है ।

तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु,

द्वाः(स्)स्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ।

द्वारस्तु सर्वाः(फ्) पिहिता दुरत्यया,

बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ 48॥

हृत+प्रत्यय+सर्व+वृत्तिषु, पौरेष्+वपि शायितेष्+वथ, बृहत्+कपाटा+यसकी+लशृङ्खलैः

ताः(ख्) कृष्णवाहे वसुदेव आगते,

स्वयं(वँ) व्यवर्यन्त यथा तमो रवेः ।

ववर्ष पर्जन्य उपां(म्)शुगर्जितः(श्),

शेषोऽन्वगाद्वारि निवारयन् फणैः ॥ 49॥

व्यवर्+यन्त, उपां(म्)+शुगर्+जितः(श्), शेषोऽन्+वगाद्वारि

उसी योगमायाने द्वारपाल और पुरवासियोंकी समस्त इन्द्रिय वृत्तियोंकी चेतना हर ली, वे सब-के-सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृहके सभी दरवाजे बंद थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहेकी जंजीरें और ताले जड़े हुए थे। उनके बाहर जाना बड़ा ही कठिन था, परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको गोदमें लेकर ज्यों ही उनके निकट पहुँचे, त्यों ही वे सब दरवाजे आप-से-आप खुल गये वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है। उस समय बादल धीरे-धीरे गरजकर जलकी फुहारें छोड़ रहे थे। इसलिये शेषजी अपने फनोंसे जलको रोकते हुए भगवान् के पीछे-पीछे चलने लगे ।

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा,

गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला ।

भयानकावर्तशताकुला नदी,

मार्गं(न्) ददौ सिन्धुरिव श्रियः(फ्) पतेः ॥ 50॥

वर्षत्+यसकृद्+यमानुजा, गम्भी+रतोयौ+घजवोर्+मिफेनिला, भया+नका+वर्तशता+कुला

उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी, इससे यमुनाजी बहुत बढ़ गयी थीं । उनका प्रवाह गहरा और तेज हो गया था। तरल तरङ्गोंके कारण जलपर फेन-ही-फेन हो रहा था। सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे। जैसे सीतापति भगवान् श्रीरामजीको समुद्रने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजीने भगवान्को मार्ग दे दिया ।

नन्दव्रजं(म्) शौरिरुपेत्य तत्र तान्,

गोपान् प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया ।

सुतं(यँ) यशोदाशयने निधाय तत्,

सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥ 51॥

प्रसुप्ता+नुपलभ्य, यशोदा+शयने, सुता+मुपा+दाय, पुनर्+गृहा+नगात्

वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर देखा कि सब-के-सब गोप नींदसे अचेत पड़े हुए हैं। उन्होंने अपने पुत्रको यशोदाजीकी शय्यापर सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बंदीगृहमें लौट आये ।

देवक्याः(श्) शयने न्यस्य, वसुदेवोऽथ दारिकाम् ।

प्रतिमुच्य पदोर्लोह-मास्ते पूर्ववदावृतः ॥ 52॥

जेलमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने पैरोंमें बेड़ियाँ डाल लीं तथा पहलेकी तरह वे बंदीगृहमें बंद हो गये ।

यशोदा नन्दपत्नी च, जातं(म्) परमबुध्यत ।

न तल्लिङ्गं(म्) परिश्रान्ता, निद्रयापगतस्मृतिः ॥ 53॥

निद्रया+पगत+स्मृतिः

उधर नन्दपत्नी यशोदाजीको इतना तो मालूम हुआ कि कोई सन्तान हुई है, परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र है या पुत्री । क्योंकि एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था और दूसरे योगमायाने उन्हें अचेत कर दिया था ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥